

## Chapter ग्यारह

### वृत्रासुर के दिव्य गुण

इस अध्याय में वृत्रासुर के सद्गुणों का वर्णन हुआ है। जब वृत्रासुर की सेना के प्रमुख सेनानायक वृत्रासुर के उपदेश को न सुनकर भाग गये तो उसने उन्हें कायर कह कर खूब धिक्कारा। वीरतापूर्वक बोलते हुए वह देवताओं का सामना करने के लिए अकेला अड़ा रहा। जब देवताओं ने वृत्रासुर के रुख को देखा तो वे इतने भयभीत हुए कि मूर्च्छित-से होने लगे और वृत्रासुर उन्हें रौंदने लगा। इन्द्र इसे सहन न कर सका, अतः उसने अपनी गदा वृत्रासुर पर चलाई लेकिन वृत्रासुर

इतना वीर था कि उसने अपने बाएँ हाथ से गदा पकड़ ली और उससे इन्द्र के हाथी को मारने लगा। वृत्रासुर के प्रहार से वह हाथी चौदह गज पीछे हट गया और पीठ पर बैठे इन्द्र समेत भूमि पर गिर पड़ा।

राजा इन्द्र ने पहले विश्वरूप को पुरोहित बनाया और बाद में उसका वध कर दिया था। वृत्रासुर ने इन्द्र को इस जघन्य कार्य की याद दिलाते हुए कहा, “यदि कोई श्रीभगवान् विष्णु का भक्त होता है और हर प्रकार से भगवान् विष्णु पर निर्भर रहता है, तो उसे विजय, ऐश्वर्य तथा मानसिक शान्ति—ये अनिवार्य रूप से उपलब्ध हो जाते हैं। ऐसे मुनष्य को तीनों लोकों में किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रह जाती। परमेश्वर इतने दयालु हैं कि वे जानबूझ कर ऐसे भक्त को ऐश्वर्य नहीं देते जिससे उसकी भक्ति में व्यवधान पड़े। अतः मैं भगवान् की सेवा करने के लिए सब कुछ त्याग देना चाहता हूँ। मैं सदा भगवान् का गुणगान करना चाहता हूँ और उनकी सेवा में लगा रहना चाहता हूँ। मैं अपने सांसारिक परिवार से विरक्त होकर भगवान् के भक्तों की संगति करूँगा। मैं किसी उच्च लोक, यहाँ तक कि ध्रुवलोक या ब्रह्मलोक में भेजे जाने की कामना भी नहीं करता, न ही मैं इस जगत में अविजित स्थिति का भूखा हूँ। मुझे ऐसी वस्तुओं की आवश्यकता नहीं है।”

श्रीशुक उवाच

त एवं शंसतो धर्म वचः पत्युरचेतसः ।

नैवागृह्णन्त सम्भ्रान्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; ते—वे; एवम्—इस प्रकार; शंसतः—प्रशंसा करते; धर्मम्—धर्म के नियम को; वचः—शब्द; पत्युः—अपने स्वामी के; अचेतसः—अत्यन्त विचलित मन से; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अगृह्णन्त—स्वीकार किया; सम्भ्रान्ताः—भयभीत; पलायन-पराः—भागने को उद्यत; नृप—हे राजन्!.

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजन्! असुरों के प्रधान सेनानायक वृत्रासुर ने अपने सेनानायकों को धर्म के नियमों का उपदेश दिया, किन्तु वे कायर तथा भगोड़े सेनानायक भय से इतने विचलित हो चुके थे कि उन्होंने उसके वचनों को नहीं माना।

विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ।

कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥

दृष्ट्वातप्यत सङ्क्रुद्ध इन्द्रशत्रुर्मर्षितः ।

तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥

### शब्दार्थ

विशीर्यमाणाम्—छिन्न-भिन्न; पृतनाम्—सेना को; आसुरीम्—असुरों की; असुर-ऋषभः—असुरों में श्रेष्ठ, वृत्रासुर; काल-  
अनुकूलैः—समय के अनुसार परिस्थितियों का पालन करते हुए; त्रिदशैः—देवताओं के द्वारा; काल्यमानाम्—पीछा किये  
गये; अनाथ-वत्—असुरक्षित की तरह; दृष्ट्वा—देखकर; अतप्यत—दुखी हुआ; सङ्क्रुद्धः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; इन्द्र-  
शत्रुः—इन्द्र का वैरी, वृत्रासुर; अमर्षितः—न सह सकने से; तान्—उन ( देवताओं ) को; निवार्य—रोक कर; ओजसा—  
अत्यन्त बलपूर्वक से; राजन्—हे राजा परीक्षित; निर्भर्त्स्य—डाँटकर; इदम्—यह; उवाच—कहा; ह—निस्सन्देह ।

हे राजा परीक्षित! समय द्वारा प्रदत्त अनुकूल अवसर का लाभ उठाकर देवताओं ने असुरों की सेना पर पीछे से आक्रमण कर दिया और असुर सैनिकों को खदेड़कर इधर-उधर बिखेर दिया, मानो उनकी सेना में कोई नायक ही न हो। अपने सैनिकों की दयनीय दशा को देखकर असुरश्रेष्ठ वृत्रासुर जिसे इन्द्रशत्रु कहा जाता था, अत्यन्त दुखी हुआ। ऐसी पराजय न सह सकने के कारण उसने देवताओं को रोका और बलपूर्वक डाँटते हुए क्रुद्धभाव से इस प्रकार कहा।

किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ।

न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥ ४ ॥

### शब्दार्थ

किम्—क्या लाभ; वः—तुम्हारे लिए; उच्चरितैः—मल-मूत्र के समान; मातुः—माता का; धावद्भिः—भागते हुए;  
पृष्ठतः—पीछे से; हतैः—मारा; न—नहीं; हि—निश्चय ही; भीत-वधः—भयभीत पुरुष का वध; श्लाघ्यः—प्रशंसनीय;  
न—न तो; स्वर्ग्यः—स्वर्गलोक की प्राप्ति; शूर-मानिनाम्—शूर वीरों का।

हे देवताओ! इन असुर सैनिकों का जन्म वृथा ही हुआ। निस्सन्देह, ये अपनी माताओं के शरीर से मलमूत्र के समान आये हैं। ऐसे शत्रुओं को, जो डर के मारे भाग रहे हैं, पीछे से मारने में क्या लाभ होगा? अपने को वीर कहलाने वाले को चाहिए कि वह अपनी मृत्यु से भयभीत शत्रु का वध न करे। ऐसा वध न तो प्रशंसनीय है, न ही इससे किसी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

**तात्पर्य :** वृत्रासुर ने देवों तथा असुरों दोनों को फटकारा, क्योंकि असुर अपने प्राणों के भय से भागे जा रहे थे और देवता उन्हें पीछे से मार रहे थे। इन दोनों के कार्य निन्दनीय थे। जब युद्ध होता है, तो विरोधी पक्ष को वीरों की तरह लड़ने के लिए तैयार रहना चाहिए। वीर कभी युद्धभूमि से भागता नहीं। वह विजय प्राप्ति के लिए अथवा युद्धभूमि में ही अपने प्राण गँवा देने के लिए सम्मुख होकर लड़ता है। यही वीरता है। पीछे से शत्रु का वध करना भी निन्दनीय है। जब शत्रु पीठ दिखाकर प्राणों के भय से भाग रहा हो तो उसे नहीं मारा जाना चाहिए। यह सैन्य विज्ञान की आचारसंहिता है।

वृत्रासुर ने असुर-सैनिकों की तुलना माताओं के मलमूत्र से करके उनका अपमान किया। माँ के उदर से कायर पुत्र तथा मलमूत्र दोनों ही निकलते हैं। वृत्रासुर ने कहा कि इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। ऐसी ही उपमा तुलसीदास ने दी है, जिसमें पुत्र तथा मूत्र को एक ही मार्ग से निर्गत बताया गया है। दूसरे शब्दों में, वीर्य तथा मूत्र दोनों ही जननेन्द्रियों से निकलते हैं, किन्तु वीर्य से पुत्र उत्पन्न होता है और मूत्र से कुछ नहीं बनता। अतः यदि पुत्र न तो वीर है और न भक्त तो ऐसा पुत्र पुत्र नहीं मूत्र ही है। इसी प्रकार चाणक्य पंडित का कथन है—

*कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः ।*

*काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीडैव केवलम् ॥*

“ऐसे पुत्र से क्या लाभ, जो न तो विद्वान है और न भगवान् का भक्त? ऐसा पुत्र उस कानी आँख के समान है, जो केवल पीड़ा तो पहुँचाती है किन्तु देखने में सहायता नहीं कर सकती।”

**यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ।**

**अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद्ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥**

#### शब्दार्थ

यदि—यदि; वः—तुम सबका; प्रधने—युद्ध में; श्रद्धा—विश्वास; सारम्—धैर्य; वा—अथवा; क्षुल्लकाः—हे नीचो; हृदि—हृदय में; अग्रे—सामने; तिष्ठत—जरा ठहरो; मात्रम्—एक क्षण के लिए; मे—मेरे; न—नहीं; चेत्—यदि; ग्राम्य-सुखे—इन्द्रियतृप्ति में; स्पृहा—आकांक्षा।

हे तुच्छ देवो! यदि तुम्हें अपनी वीरता में सचमुच विश्वास है, यदि तुम्हारे अन्तस्थल में धैर्य है और यदि तुम इन्द्रियतृप्ति के कामी नहीं हो, तो क्षण भर मेरे समक्ष ठहरो।

तात्पर्य : देवताओं को डाँटते हुए वृत्रासुर ने ललकारा, “अरे देवो! यदि तुम सचमुच वीर हो तो अब मेरे सामने ठहरो और अपना शौर्य दिखाओ। यदि तुम लड़ना नहीं चाहते, यदि तुम अपने प्राणों से भयभीत हो तो मैं तुम्हें मारूँगा नहीं, क्योंकि मैं तुम्हारी तरह दुष्ट प्रकृति का नहीं हूँ कि ऐसे पुरुषों का वध करूँ जो न तो वीर हैं और न लड़ना चाहते हैं। यदि तुम्हें अपनी शूरता में विश्वास है, तो मेरे समक्ष ठहरो।”

एवं सुरगणान्क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून् ।

व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सुर-गणान्—देवतागण को; क्रुद्धः—अत्यन्त क्रुद्ध होकर; भीषयन्—डरावने; वपुषा—अपने शरीर से; रिपून्—अपने शत्रुओं को; व्यनदत्—गरजा; सु-महा-प्राणः—परम बलवान् वृत्रासुर; येन—जिससे; लोकाः—सभी लोग; विचेतसः—अचेत, बेहोश।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा—अति क्रुद्ध एवं अत्यन्त शक्तिशाली वीर वृत्रासुर देवताओं को अपने बलिष्ठ एवं गठित शरीर से भयभीत करने लगा। जब उसने जोर से गर्जना की तो लगभग सारे जीव अचेत हो गये।

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ।

निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

तेन—उससे; देव-गणाः—देवता; सर्वे—समस्त; वृत्र-विस्फोटनेन—वृत्रासुर की भयानक गर्जना से; वै—निस्सन्देह; निपेतुः—गिर पड़े; मूर्च्छिताः—मूर्च्छित होकर; भूमौ—पृथ्वी पर; यथा—जिस प्रकार; एव—निस्सन्देह; अशनिना—वज्र से; हताः—मारे गये।

जब समस्त देवताओं ने वृत्रासुर की सिंह जैसी भयानक गर्जना सुनी तो वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, मानो उन पर वज्रपात हुआ हो।

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं  
निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ।  
गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा  
नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥

### शब्दार्थ

ममर्द—कुचल दिया; पद्भ्याम्—अपने पैरों से; सुर-सैन्यम्—देवताओं की सेना को; आतुरम्—अत्यन्त भयभीत;  
निमीलित-अक्षम्—बन्द नेत्रों वाले; रण-रङ्ग-दुर्मदः—युद्धभूमि में अजेय; गाम्—पृथ्वी मंडल को; कम्पयन्—हिलाते  
हुए; उद्यत-शूलः—अपना त्रिशूल लेकर; ओजसा—अपने बल से; नालम्—नरकट के; वनम्—जंगल; यूथ-पतिः—  
हाथी; यथा—जिस प्रकार; उन्मदः—पगलाया ।

ज्योंही देवताओं ने डर के मारे अपनी आँखें बन्द कर लीं, वृत्रासुर ने अपना त्रिशूल उठा  
करके और अपने बल से पृथ्वी को दहलाते हुए युद्धभूमि में देवताओं को अपने पैरों के तले  
उसी प्रकार रौंद डाला जिस प्रकार पागल हाथी नरकट के वन को रौंद डालता है ।

विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः  
स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ।  
चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां  
जग्राह वामेन करेण लीलया ॥ ९ ॥

### शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; तम्—उस ( वृत्रासुर ) को; वज्र-धरः—वज्र धारण किये हुए ( राजा इन्द्र ) ने; अति—अत्यधिक;  
अमर्षितः—क्रुद्ध; स्व—अपने; शत्रवे—शत्रु के प्रति; अभिद्रवते—दौड़ते हुए; महा-गदाम्—अत्यन्त शक्तिशाली गदा;  
चिक्षेप—फेंका; ताम्—उस ( गदा ) को; आपततीम्—अपनी ओर आती; सु-दुःसहाम्—सामना करना कठिन; जग्राह—  
पकड़ लिया; वामेन—अपने बाएँ; करेण—हाथ से; लीलया—आसानी से ।

वृत्रासुर की करतूत देखकर स्वर्ग का राजा इन्द्र अधीर हो उठा और उस पर अपनी एक  
गदा फेंकी, जिसको रोकपाना अत्यन्त दुष्कर था। फिर भी ज्योंही वह गदा उसकी ओर  
पहुँची, वृत्रासुर ने उसे अपने बाएँ हाथ से सरलतापूर्वक पकड़ लिया ।

स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया  
महेन्द्रवाहं गदयोरुविक्रमः ।  
जघान कुम्भस्थल उन्नदन्मृधे  
तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नुप ॥ १० ॥

### शब्दार्थ

सः—वह; इन्द्र-शत्रुः—वृत्रासुर; कुपितः—क्रुद्ध; भृशम्—अत्यधिक; तथा—उससे; महेन्द्र-वाहम्—इन्द्र का वाहन जो हाथी है; गदया—गदा से; उरु-विक्रमः—अपने बल के लिए विख्यात; जघान—मारा; कुम्भ-स्थले—सिर पर; उन्नदन्—चिगघाड़ करता हुआ; मृधे—युद्ध में; तत् कर्म—वह कार्य ( इन्द्र के हाथी के सिर पर वार ); सर्वे—सभी सैनिक ( दोनों पक्षों के ); समपूजयन्—प्रशंसा की; नृप—हे राजा परीक्षित!.

हे राजा परीक्षित! इन्द्र के शत्रु, पराक्रमी वृत्रासुर ने उस गदा से क्रोधपूर्वक इन्द्र के हाथी के सिर पर जोर से प्रहार किया जिससे वह युद्धभूमि में चिगघाड़ने लगा। इस वीरता पूर्ण कार्य के लिए दोनों पक्षों के सैनिकों ने उसकी प्रशंसा की।

ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो

विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ।

अपासरद्भिन्नमुखः सहेन्द्रो

मुञ्चन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ऐरावतः—राजा इन्द्र का हाथी, ऐरावत; वृत्र-गदा-अभिमृष्टः—वृत्रासुर की गदा के आघात से; विघूर्णितः—चकराकर; अद्रिः—पर्वत; कुलिशा—वज्र से; आहतः—प्रताड़ित; यथा—जिस प्रकार; अपासरत्—पीछे हट गया; भिन्न-मुखः—मुँह टूट जाने से; सह-इन्द्रः—इन्द्र सहित; मुञ्चन्—उगलते हुए; असृक्—रक्त; सप्त-धनुः—सात बाणों के तुल्य दूरी ( लगभग चौदह गज ); भृश—अत्यधिक; आर्तः—व्याकुल।

वृत्रासुर की गदा के आघात से ऐरावत हाथी वज्र के द्वारा ताड़ित पर्वत के समान, तीव्र वेदना का अनुभव करता हुआ तथा अपने टूटे मुँह से रक्त उगलता हुआ चौदह गज पीछे छिटक गया। भारी वेदना के कारण वह पीठ पर बैठे इन्द्र के समेत भूमि पर गिर पड़ा।

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे

प्रायुङ्क्त भूयः स गदां महात्मा ।

इन्द्रोऽमृतस्यन्दिकराभिमर्श

वीतव्यथक्षतवाहोऽवतस्थे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; सन्न—शक्ति; वाहाय—अपने वाहन के हेतु; विषण्ण-चेतसे—अपने चित्त में अत्यन्त खिन्न; प्रायुङ्क्त—चलाया; भूयः—पुनः; सः—उस ( वृत्रासुर ) ने; गदाम्—गदा; महा-आत्मा—वह महापुरुष ( इन्द्र को खिन्न देखकर उस पर गदा न चलाने वाला ); इन्द्रः—इन्द्र; अमृत-स्यन्दि-कर—अमृत उत्पन्न करने वाले अपने हाथ के; अभिमर्श—स्पर्श से; वीत—मुक्त; व्यथ—पीड़ा से; क्षत—तथा घाव; वाहः—जिसका वाहन हाथी; अवतस्थे—वहाँ आ खड़ा हुआ।

जब उसने देखा कि इन्द्र-वाहन हाथी थका हुआ एवं घायल है और उसे इस तरह आहत

हुआ देखकर इन्द्र स्वयं खिन्न है, तो वह महापुरुष वृत्रासुर धर्म के नियमों का पालन करते हुए इन्द्र पर अपनी गदा से पुनः प्रहार करने से हिचका। इस अवसर का लाभ उठाकर इन्द्र ने अपने अमृतवर्षी हाथ से हाथी को छू दिया जिससे उस पशु की पीड़ा जाती रही और उसके घाव ठीक हो गये। तब हाथी तथा इन्द्र दोनों चुपचाप खड़े हो गए।

स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं  
वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ।  
स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः  
शोकेन मोहेन हसञ्जगाद ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह ( वृत्रासुर ); तम्—उस ( इन्द्र ) को; नृप-इन्द्र—हे राजा परीक्षित; आहव-काम्यया—युद्ध की इच्छा से; रिपुम्—शत्रु को; वज्र-आयुधम्—जिसका हथियार वज्र ( दधीचि की अस्थियों से निर्मित ) था; भ्रातृ-हणम्—अपने भाई का वध करने वाले; विलोक्य—देखकर; स्मरन्—स्मरण करके; च—तथा; तत्-कर्म—उसके कार्य; नृ-शंसम्—क्रूर; अंहः—बड़ा पाप; शोकेन—शोक से; मोहेन—मोहवश; हसन्—हँसता हुआ; जगाद—कहने लगा।

हे राजन्! जब महा भट्ट वृत्रासुर ने अपने शत्रु तथा अपने भाई के हत्यारे इन्द्र को अपने समक्ष लड़ने के लिए हाथ में वज्र लिए हुए देखा तो उसे स्मरण हो आया कि इन्द्र ने किस क्रूरता के साथ उसके भाई का वध किया था। इन्द्र के पापकर्मों को सोचते हुए वह शोक तथा विस्मृति से पागल हो उठा। व्यंग्य से हँसते हुए उसने इस प्रकार कहा।

श्रीवृत्र उवाच  
दिष्ट्या भवान्मे समवस्थितो रिपु-  
र्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ।  
दिष्ट्यानृणोऽद्याहमसत्तम त्वया  
मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्दृदाचिरात् ॥ १४ ॥

#### शब्दार्थ

श्री-वृत्रः उवाच—महान् वीर वृत्रासुर ने कहा; दिष्ट्या—सौभाग्य से; भवान्—आप; मे—मेरे; समवस्थितः—( समक्ष ) स्थित; रिपुः—मेरा शत्रु; यः—जो; ब्रह्म-हा—ब्राह्मण का वध करने वाला; गुरु-हा—अपने गुरु का वध करने वाला; भ्रातृ-हा—मेरे भाई का वध करने वाला; च—भी; दिष्ट्या—सौभाग्य से; अनृणः—उत्तम ( भाई के ); अद्य—आज; अहम्—मैं; असत्-तम—हे परम घृणित; त्वया—तुम्हारे द्वारा; मत्-शूल—मेरे त्रिशूल से; निर्भिन्न—भेदे जाकर; दृषत्—पत्थर की तरह; हदा—जिसका हृदय; अचिरात्—तुरन्त।



श्रीवृत्रासुर ने कहा : वह जिसने ब्राह्मण की हत्या की है, वह जिसने अपने गुरु का वध किया है, वह जिसने मेरे भाई की हत्या की है, इस समय सौभाग्यवश मेरे शत्रु के रूप में मेरे सामने खड़ा हुआ है। अरे नीच! जब मैं तुम्हारे पत्थर-सदृश हृदय को अपने त्रिशूल से भेद डालूँगा तब मैं अपने भाई के ऋण से उन्नत हो सकूँगा।

यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजाते-  
गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ।  
विश्रभ्य खड्गेन शिरांस्यवृश्चत्  
पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो; नः—हमारे; अग्र-जस्य—बड़े भाई का; आत्म-विदः—जिसे आत्म-साक्षात्कार हो चुका है, स्वरूपसिद्ध; द्वि-जातेः—सुपात्र ब्राह्मण; गुरोः—तुम्हारा गुरु; अपापस्य—समस्त पापकर्मों से मुक्त; च—भी; दीक्षितस्य—यज्ञ की दीक्षा देने वाले के रूप में नियुक्त; विश्रभ्य—विश्वासपूर्वक; खड्गेन—अपनी तलवार से; शिरांसि—सिर; अवृश्चत्—काट लिया; पशोः—पशु का; इव—सदृश; अकरुणः—निर्दय; स्वर्ग-कामः—स्वर्ग लोक की इच्छा करने वाले।

तुमने स्वर्ग में निवास करते रहने के उद्देश्य से मेरे बड़े भाई का, जो स्वरूपसिद्ध ( आत्मवेत्ता ), निष्पाप एवं सुपात्र ब्राह्मण था, जिसे तुमने अपना मुख्य पुरोहित नियुक्त किया था, वध कर दिया है। वह तुम्हारा गुरु था और यद्यपि तुमने अपना यज्ञ कराने का सारा भार उस पर छोड़ रखा था, किन्तु बाद में अत्यन्त क्रूरता के साथ उसके सिर को शरीर से उसी प्रकार छिन्न कर दिया जिस प्रकार कोई पशु की हत्या कर दे।

श्रीहृदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां  
स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्हाम् ।  
कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेह-  
मस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृधाः ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

श्री—ऐश्वर्य या सौन्दर्य; ह्री—लज्जा; दया—दया; कीर्तिभिः—तथा कीर्ति से; उज्झितम्—विहीन होकर; त्वाम्—तुम; स्व-कर्मणा—अपने कर्मों से; पुरुष-अदैः—राक्षसों ( मनुष्य भक्षी ) के द्वारा; च—तथा; गर्हाम्—निन्दनीय; कृच्छ्रेण—कठिनाई से; मत्-शूल—मेरे त्रिशूल से; विभिन्न—बिंध कर; देहम्—तुम्हारा शरीर; अस्पृष्ट-वह्निम्—अग्नि द्वारा न छुआ जाकर; समदन्ति—खा जायेंगे; गृधाः—गीध।

अरे इन्द्र! तुम सभी प्रकार की लज्जा, दया, कीर्ति तथा ऐश्वर्य से विहीन हो। अपने सकाम कर्मों के फल से इन सद्गुणों से रहित होकर तुम राक्षसों के द्वारा भी निन्दनीय हो। अब मैं तुम्हारे शरीर को अपने त्रिशूल से बेध डालूँगा और जब तुम घोर कष्ट से मरोगे तो अग्नि भी तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगी, केवल गीध तुम्हारे शरीर को खायेंगे।

अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा  
यदुद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ।  
तैर्भूतनाथान्सगणान्निशात  
त्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

अन्ये—अन्य लोग; अनु—अनुमान करते हैं; ये—जो; त्वा—तुम; इह—इस सम्बन्ध में; नृ-शंसम्—अत्यन्त क्रूर; अज्ञाः—जो मेरे शौर्य से परिचित नहीं हैं; यत्—यदि; उद्यत-अस्त्राः—अपनी तलावारें उठाये हुए; प्रहरन्ति—आक्रमण करते हैं; मह्यम्—मुझको; तैः—उनसे; भूत-नाथान्—भूतों के स्वामियों को, यथा भैरव; स-गणान्—अपने गणों सहित; निशात—तेज किया हुआ; त्रि-शूल—त्रिशूल से; निर्भिन्न—बेधा हुआ या भिन्न किया हुआ; गलैः—गर्दनों वाले; यजामि—बलि दूँगा।

तुम स्वभाव से क्रूर हो। यदि अन्य देवता मेरे शौर्य से अपरिचित रह कर तुम्हारे अनुयायी बनकर अपने उठे हुए हथियारों से मुझ पर आक्रमण करते हैं, तो मैं अपने इस तीक्ष्ण त्रिशूल से उनके सिर काट लूँगा और उन सिरों को भैरव तथा उनके गणों सहित अन्य भूतों के नायकों को बलि चढ़ाऊँगा।

अथो हरे मे कुलिशेन वीर  
हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ।  
तत्रानृणो भूतबलिं विधाय  
मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

अथो—अन्यथा; हरे—हे इन्द्र; मे—मेरे; कुलिशेन—अपने वज्र से; वीर—हे वीर; हर्ता—काट लो; प्रमथ्य—मेरी सेना को नष्ट करके; एव—निश्चय ही; शिरः—सिर; यदि—यदि; इह—इस युद्ध में; तत्र—उस दशा में; अनृणः—उग्रहण; भूत-बलिम्—समस्त जीवात्माओं के लिए भेंट; विधाय—व्यवस्था करके; मनस्विनाम्—नारद मुनि जैसे परम साधुओं की; पाद-रजः—चरणकमलों की धूलि; प्रपत्स्ये—प्राप्त करूँगा।

किन्तु यदि तुम इस युद्ध में अपने वज्र से मेरा सर काट लेते हो और मेरे सैनिकों को मार

डालते हो तो हे इन्द्र, हे महान् वीर! मैं अपने शरीर को अन्य जीवात्माओं ( यथा सियारों तथा गीधों ) को भेंट करने में अति प्रसन्न हूँगा। इस कारण मैं अपने कर्मबन्धन के फलों से छूट जाऊँगा और यह मेरा अहोभाग्य होगा कि मैं नारद मुनि जैसे परम भक्तों के चरणकमलों की धूलि प्राप्त करूँगा।

तात्पर्य : श्रीनरोत्तम दास ठाकुर गाते हैं—

एइ छय गोसाँइ यार, मुइ तार दास।

ताइ' सवार पदरेणु मोर पञ्च-ग्रास ॥

“मैं छह गोस्वामियों का दास हूँ और उनके चरणकमलों की धूलि मुझे पाँच प्रकार के भोजन देती है।” वैष्णव सदैव पूर्व आचार्यों तथा वैष्णवों के चरणकमलों की धूलि की कामना करता है। वृत्रासुर को विश्वास था कि वह इन्द्र के साथ युद्ध करते हुए मारा जायेगा, क्योंकि यही भगवान् विष्णु की इच्छा थी। वह मृत्यु के लिए सन्नद्ध था, क्योंकि वह जानता था कि मृत्यु के बाद उसे भगवान् का धाम प्राप्त होगा। वही परम गन्तव्य है और वह वैष्णव के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है। छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा—बिना वैष्णव की कृपा के कोई कभी भगवान् के धाम नहीं गया। अतः इस श्लोक में *मनस्विनां पाद-रजःप्रपत्स्ये*—“मुझे परम भक्तों के चरणकमलों की धूलि प्राप्त होगी,” ये शब्द आये हैं। *मनस्विनाम्* शब्द का अर्थ है, महान् भक्त जो सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हैं। वे सदैव शान्त रह कर कृष्ण का चिन्तन करते हैं, अतः वे धीर कहलाते हैं। ऐसे भक्तों के सबसे अच्छे उदाहरण नारद मुनि हैं। यदि किसी को मनस्वी के चरणकमल की धूलि प्राप्त हो जाये तो वह निश्चित रूप से भगवान् के धाम को जाता है।

सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं

पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ।

मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रः

स्यान्निष्फलः कृपणार्थैव याञ्छा ॥ १९ ॥

### शब्दार्थ

सुर-ईश—हे देवों के राजा; कस्मात्—क्यों; न—नहीं; हिनोषि—छोड़ते; वज्रम्—वज्र; पुरः स्थिते—तुम्हारे समक्ष खड़ा हुआ; वैरिणि—तुम्हारा शत्रु; मयि—मुझ पर; अमोघम्—न चूकने वाला ( वज्र ); मा—मत; संशयिष्ठाः—सन्देह करो; न—नहीं; गदा इव—गदा के समान; वज्रः—वज्र; स्यात्—हो सकता है; निष्फलः—बेकार; कृपण—कंजूस व्यक्ति से; अर्था—धन के लिए; इव—सदृश; याच्ना—याचना।

हे स्वर्ग के राजा इन्द्र! तुम अपने समक्ष खड़े अपने शत्रु मुझ पर अपना वज्र क्यों नहीं छोड़ते? यद्यपि गदा द्वारा मुझ पर किया गया तुम्हारा प्रहार निश्चय ही उसी प्रकार निष्फल हो गया था, जिस प्रकार कंजूस से धन की याचना निष्फल होती है, किन्तु तुम्हारे द्वारा धारण किया गया यह वज्र निष्फल नहीं होगा। तुम्हें इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिए।

तात्पर्य : जब इन्द्र ने अपनी गदा वृत्रासुर पर चलाई थी तो उसने अपने बाएँ हाथ से पकड़ कर उससे इन्द्र के हाथी के सिर पर दे मारा था। इस प्रकार इन्द्र का वह आक्रमण बुरी तरह निष्फल हो गया था। उससे इन्द्र का हाथी घायल हो गया था और चौदह गज पीछे धकेल दिया गया था। अतः इस बार यद्यपि इन्द्र वृत्रासुर पर वज्र छोड़ने जा रहा था, किन्तु उसे सन्देह था कि कहीं गदा के समान यह वज्र भी बेकार न जाये। किन्तु वृत्रासुर ने वैष्णव होने के नाते इन्द्र को यह विश्वास दिलाया कि यह वज्र निष्फल नहीं होगा, क्योंकि वृत्रासुर को ज्ञात था कि भगवान् विष्णु के आदेश से इसे निर्मित किया गया है। यद्यपि इन्द्र को सन्देह था, क्योंकि वह समझ न सका कि विष्णु की आज्ञा वृथा नहीं जाती, किन्तु वृत्रासुर भगवान् विष्णु के उद्देश्य से परिचित था। वृत्रासुर भगवान् विष्णु के आदेशानुसार निर्मित इस वज्र द्वारा मारे जाने के लिए उत्सुक था, क्योंकि उसे विश्वास था कि इस प्रकार वह भगवान् के धाम वापस जा सकेगा। वह तो केवल अवसर की प्रतीक्षा में था कि कब वज्र छूटे। परिणाम स्वरूप वृत्रासुर ने इन्द्र से कहा, “यदि तुम मुझे अपना शत्रु समझ कर मारना चाहते हो तो इस अवसर का सदुपयोग करो और मुझे मार डालो। तुम्हें विजय मिलेगी और मैं भगवान् के धाम चला जाऊँगा। तुम्हारा कार्य हम दोनों के लिए लाभकर होगा, अतः इसे तुरन्त पूरा करो।”

नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा  
 हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ।  
 तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो  
 यतो हरिर्विजयः श्रीगुणास्ततः ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

ननु—निश्चय ही; एषः—यह; वज्रः—वज्र; तव—तुम्हारा; शक्र—हे इन्द्र; तेजसा—तेज से; हरेः—भगवान् विष्णु के;  
 दधीचेः—दधीचि की; तपसा—तपस्या से; च—तथा; तेजितः—शक्तिसम्पन्न; तेन—उससे; एव—निश्चय ही; शत्रुम्—  
 अपने शत्रु को; जहि—मारो; विष्णु-यन्त्रितः—भगवान् विष्णु द्वारा आदेशित; यतः—जहाँ कहीं भी; हरिः—भगवान्  
 विष्णु; विजयः—विजय; श्रीः—ऐश्वर्य; गुणाः—अन्य सद्गुण; ततः—वहाँ।

हे स्वर्ग के राजा इन्द्र! तुमने जिस वज्र को मुझे मारने के लिए धारण किया है, वह भगवान् विष्णु के तेज तथा दधीचि की तपस्या-शक्ति से समन्वित है। चूँकि तुम यहाँ भगवान् विष्णु की आज्ञा से मुझे मारने आये हो अतः इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारे वज्र के छूटने से मैं मारा जाऊँगा। भगवान् विष्णु तुम्हारा साथ दे रहे हैं, अतः विजय, ऐश्वर्य तथा समस्त सद्गुण निश्चय ही तुम्हारे साथ हैं।

तात्पर्य : वृत्रासुर ने इन्द्र को न केवल विश्वास दिलाया कि वज्र अजेय है, वरन् अपने प्रति जल्दी से जल्दी प्रयोग किये जाने के लिए भी प्रोत्साहित किया। वृत्रासुर उत्सुक था कि भगवान् विष्णु द्वारा प्रेषित वज्र के प्रहार से उसका वध हो जिससे वह भगवान् के धाम शीघ्र जा पहुँचे। इन्द्र को इस वज्र के चलाने से विजय मिलेगी और स्वर्गलोकों का भोग प्राप्त होगा, किन्तु वह जन्म-मरण के चक्र में फँसा रहेगा। इन्द्र वृत्रासुर पर विजय प्राप्त करके सुख भोगना चाहता था, किन्तु वह वास्तविक सुख नहीं होगा। स्वर्गलोक ब्रह्मलोक के ठीक नीचे स्थित है किन्तु जैसाकि श्रीकृष्ण ने कहा है, *आब्रह्मभुवनल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन*। भले ही मनुष्य ब्रह्मलोक को पा ले, किन्तु वह पुनः पुनः निम्न लोकों में गिरता रहता है। किन्तु यदि कोई भगवान् के पास चला जाता है, तो वह इस संसार में कभी नहीं लौटता। वृत्रासुर को मारने से इन्द्र को वास्तव में कोई लाभ नहीं होगा, वह इसी संसार में बना रहेगा, किन्तु वृत्रासुर वैकुण्ठ लोक को चला जायेगा। अतः

विजय तो वृत्रासुर की होनी थी, इन्द्र की नहीं।

अहं समाधाय मनो यथाह नः

सङ्कर्षणस्तच्चरणारविन्दे ।

त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो

गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥ २१ ॥

### शब्दार्थ

अहम्—मैंने; समाधाय—स्थिर करके; मनः—मन; यथा—जिस प्रकार; आह—कहा; नः—हमारा; सङ्कर्षणः—भगवान् संकर्षण; तत्-चरण-अरविन्दे—उनके चरण कमलों पर; त्वत्-वज्र—तुम्हारे वज्र को; रंहः—वेग से; लुलित—विच्छेदित; ग्राम्य—भौतिक आसक्ति; पाशः—फंदा; गतिम्—गन्तव्य; मुनेः—नारद मुनि तथा अन्य भक्तों का; यामि—प्राप्त करूँगा; अपविद्ध—त्याग कर; लोकः—यह संसार जहाँ सभी प्रकार की नश्वर वस्तुओं की कामना की जाती है।

तुम्हारे वज्र के वेग से मैं भौतिक बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा और यह शरीर तथा भौतिक कामनाओं वाला यह संसार त्याग दूँगा। मैं भगवान् संकर्षण के चरणकमलों पर अपने मन को स्थिर करके नारद मुनि जैसे महामुनियों के गन्तव्य को प्राप्त कर सकूँगा जैसा कि भगवान् संकर्षण ने कहा है।

तात्पर्य : अहं समाधाय मनः शब्दों से सूचित होता है कि मृत्यु के समय सबसे आवश्यक कर्तव्य है मन को केन्द्रित करना। यदि मनुष्य श्रीकृष्ण, विष्णु, संकर्षण या किसी विष्णु मूर्ति के चरणकमलों में अपना मन स्थिर (केन्द्रित) कर सकता है, तो उसका जीवन सफल हो जाएगा। वृत्रासुर ने इन्द्र से कहा कि जब वह अपने मन को संकर्षण के चरणारविन्द में स्थिर किये हो तो वह अपना वज्र छोड़े। भगवान् विष्णु द्वारा प्रदत्त वज्र से उसकी मृत्यु निश्चित थी। इसके निष्फल होने का कोई प्रश्न नहीं था। अतः वृत्रासुर ने इन्द्र से प्रार्थना की कि वह तुरन्त अपना वज्र छोड़े। वह अपने मन को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में स्थिर करके तैयार हो गया। भक्त अपने इस भौतिक शरीर को त्यागने के लिए सदैव तैयार रहता है, जिसे यहाँ पर ग्राम्य-पाश अर्थात् भौतिक आसक्ति का फंदा कहा गया है। यह शरीर तनिक भी अच्छा नहीं, यह तो मात्र सांसारिक बन्धन का कारण है। दुर्भाग्यवश शरीर के नाशवान् होने पर भी मूर्ख तथा धूर्त पुरुष शरीर पर पूर्ण आस्था

रखते हैं और कभी भी भगवान् के धाम लौट जाने के इच्छुक नहीं रहते।

पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां

याः सम्पदो दिवि भूमौ रसायाम् ।

न राति यद्द्वेष उद्वेग आधि-

र्मदः कलिर्व्यसनं सम्प्रयासः ॥ २२ ॥

### शब्दार्थ

पुंसाम्—मनुष्यों को; किल—निश्चय ही; एकान्त-धियाम्—आध्यात्मिक चेतना में उन्नत; स्वकानाम्—श्रीभगवान् के अपने; याः—जो; सम्पदः—ऐश्वर्य; दिवि—स्वर्गलोक में; भूमौ—मध्यलोक में; रसायाम्—तथा अधः लोकों में; न—नहीं; राति—प्रदान करता है; यत्—जिससे; द्वेषः—द्वेष, ईर्ष्या; उद्वेगः—चिन्ता; आधिः—मानसिक क्षोभ; मदः—घमंड; कलिः—कलह; व्यसनम्—हानि के कारण उत्पन्न दुख; सम्प्रयासः—महान् प्रयत्न।

श्रीभगवान् के चरणारविन्द में जो व्यक्ति पूर्णतया समर्पित होते हैं और निरन्तर उनके चरणारविन्द का चिन्तन करते हैं, उन्हें भगवान् अपने पार्षदों या सेवकों के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। भगवान् ऐसे सेवकों को उच्च, मध्य तथा निम्न लोकों का आकर्षक ऐश्वर्य प्रदान नहीं करते, क्योंकि जब उन्हें इन लोकों में से किसी एक की भी प्राप्ति हो जाती है, तो उससे शत्रुता, चिन्ता, मानसिक क्षोभ, अभिमान तथा कलह की वृद्धि होती है। इस प्रकार मनुष्य को अपनी सम्पत्ति को बढ़ाने और उसको बनाये रखने में काफी प्रयास करना पड़ता है और जब सम्पत्ति की क्षति हो जाती है, तो उसे भारी दुख होता है।

तात्पर्य : भगवद्गीता (४.११) में भगवान् का कथन है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

“जो जिस भाव से मेरी शरण लेते हैं, उसी के अनुरूप मैं उन्हें फल देता हूँ। हे पार्थ! प्रत्येक मनुष्य सब प्रकार से मेरे पथ का अनुगमन करता है।” इन्द्र तथा वृत्रासुर दोनों निश्चय ही भगवान् के भक्त थे, यद्यपि इन्द्र ने वृत्रासुर को मारने के लिए भगवान् विष्णु का आदेश ले रखा था। वास्तव में वृत्रासुर के प्रति भगवान् अत्यन्त कृपालु थे, क्योंकि इन्द्र के वज्र से वृत्रासुर के मारे जाने

पर वह भगवान् के धाम पहुँचेगा जबकि विजयी इन्द्र को इसी संसार में सड़ना पड़ेगा। चूँकि दोनों भक्त थे, अतः भगवान् ने उनकी इच्छानुसार उन्हें वरदान दिए। वृत्रासुर ने कभी भौतिक सम्पत्ति की कामना नहीं की, क्योंकि उसे इसकी नियति का पता था। सम्पत्ति एकत्र करने के लिए मनुष्य को काफी श्रम करना पड़ता है और उसके प्राप्त होने पर अनेक शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं, क्योंकि यह संसार प्रतिद्वंद्विता से ओतप्रोत है। यदि कोई धनी हो जाता है, तो उसके मित्र तथा परिजन उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। अतः एकान्त भक्तों को श्रीकृष्ण भौतिक सम्पत्ति प्रदान नहीं करते। कभी-कभी भक्त को उपदेश कार्य के लिए कुछ धन की आवश्यकता होती है, किन्तु प्रचारक की सम्पत्ति कर्मी के समान नहीं होती। कर्मी का धन कर्म के फलस्वरूप प्राप्त किया जाता है, किन्तु भक्तों के धन की श्रीभगवान् द्वारा व्यवस्था की जाती है, जिससे वे भक्ति के लिए कार्य कर सकें। चूँकि भक्त भगवान् की सेवा के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य के लिए भौतिक धन का प्रयोग नहीं करता, अतः भक्त के धन की तुलना कर्मी के धन से नहीं की जानी चाहिए।

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्-

पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ।

ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो

यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

त्रै-वर्गिक—तीन उद्देश्यों के लिए जो धर्म, अर्थ तथा काम हैं; आयास—प्रयत्न; विघातम्—विनाश; अस्मत्—हमारा; पतिः—भगवान्; विधत्ते—करता है; पुरुषस्य—भक्त का; शक्र—हे इन्द्र; ततः—जिससे; अनुमेयः—यह अनुभव लगाया जाता है; भगवत्-प्रसादः—श्रीभगवान् की विशेष कृपा; यः—जो; दुर्लभः—प्राप्त करना अत्यन्त कठिन; अकिञ्चन-गोचरः—शुद्ध भक्तों की पहुँच में; अन्यैः—दूसरों के द्वारा, जो भौतिक सुख चाहते हैं।

हमारे भगवान् अपने भक्तों को धर्म, अर्थ तथा काम ( इन्द्रिय-तृप्ति ) के लिए वृथा प्रयास करने के प्रति वर्जित करते हैं। हे इन्द्र! इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भगवान् कितने दयालु हैं। ऐसी कृपा केवल शुद्ध भक्तों को प्राप्य है, भौतिक लाभ चाहने वाले व्यक्तियों को नहीं।



**तात्पर्य :** मानव जीवन के चार उद्देश्य हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। सभी मनुष्य सामान्यतः प्रथम तीन की कामना करते हैं, किन्तु भक्त को इस जीवन तथा अगले जीवन में श्रीभगवान् की सेवा करने के अतिरिक्त कोई भी इच्छा नहीं रहती। शुद्ध भक्तों पर भगवान् की विशिष्ट कृपा यही होती है कि वे उसे धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले वृथा श्रम से बचा लेते हैं। किन्तु यदि कोई इन लाभों को चाहता है, तो भगवान् उसे अवश्य प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ, इन्द्र भक्त होकर भी भौतिक बन्धन से उद्धार पाने का इच्छुक नहीं था, उल्टे वह इन्द्रिय-तृप्ति तथा स्वर्गलोक में उच्चस्तरीय भौतिक सुख चाहता था। किन्तु शुद्ध भक्त होने के कारण वृत्रासुर ने केवल भगवान् की सेवा करने की इच्छा की। अतः भगवान् ने इन्द्र द्वारा उसके शारीरिक बन्धन को विनष्ट करा कर अपने धाम पहुँचने की व्यवस्था कर दी। वृत्रासुर ने इन्द्र से प्रार्थना की कि जितनी जल्दी हो सके वह अपना वज्र चलाए जिससे इन्द्र तथा वह दोनों ही भक्ति की दिशा में अपनी अपनी प्रगति के अनुसार लाभ उठा सकें।

अहं हरे तव पादैकमूल-

दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।

मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते

गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥ २४ ॥

#### शब्दार्थ

अहम्—मैं; हरे—हे भगवन्; तव—तुम्हारे (आपके); पाद-एक-मूल—जिसकी एकमात्र शरण भगवत-चरणकमल है; दास-अनुदासः—आपके दास का भी दास; भवितास्मि—होऊँगा; भूयः—पुनः; मनः—मेरा मन; स्मरेत—स्मरण करे; असु-पतेः—मेरे जीवन के स्वामी का; गुणान्—गुण समूह; ते—आपका; गृणीत—जप करें; वाक्—मेरे शब्द; कर्म—आपकी सेवा के लिए कार्य; करोतु—करे; कायः—मेरा शरीर।

हे भगवन्! क्या मैं पुनः आपका दासानुदास बन सकूँगा जो आपके ही चरणकमल की शरण लेते हैं? हे मेरे जीवनाधार! क्या मैं आपके दासों का दास बन सकूँगा जिससे मेरा मन सदैव आपके दिव्य गुणों को स्मरण करता रहे, मेरी वाणी नित्य आपके गुणों का गान करती रहे और मेरा शरीर आपकी प्रेम-भक्ति में निरन्तर लगा रहे?

**तात्पर्य :** इस श्लोक में भक्तिमय जीवन का सार दिया गया है। पहले मनुष्य को भगवान् के दास का भी दास (दासानुदास) बनना पड़ता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने यही उपदेश दिया और अपना उदाहरण प्रस्तुत करके दिखाया कि जीवात्मा को सदैव गोपियों के पालक श्रीकृष्ण के दास के दास बनने की आकांक्षा करनी चाहिए ( *गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः* )। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य को चाहिए कि ऐसा गुरु स्वीकार करे जो गुरु-परम्परा से सम्बद्ध हो और भगवान् के दास का भी दास हो। उसी के निर्देश में वह अपनी तीनों सम्पत्तियां अर्थात् मन, वाणी तथा शरीर को लगाए। गुरु के आदेशानुसार शरीर को शारीरिक कार्यों में लगाए, मन कृष्ण के विषय में निरन्तर सोचे और अपनी वाणी को भगवान् के यश के प्रचार में लगाए। यदि मनुष्य इस प्रकार से भगवान् की प्रेमाभक्ति करता है, तो उसका जीवन सार्थक हो जाता है।

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं

न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा

समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥ २५ ॥

**शब्दार्थ**

न—नहीं; नाक-पृष्ठम्—स्वर्गलोक या ध्रुवलोक; न—न तो; च—भी; पारमेष्ठ्यम्—जिस लोक में ब्रह्मा रहते हैं; न—न तो; सार्व-भौमम्—समस्त पृथ्वी लोकों पर एकाधिपत्य; न—नहीं; रसा-आधिपत्यम्—अधोलोकों का स्वामित्व; न—नहीं; योग-सिद्धीः—आठ प्रकार की यौगिक शक्तियाँ ( अणिमा, लघिमा, महिमा इत्यादि ) ; अपुनः-भवम्—पुनर्जन्म से छुटकारा; वा—अथवा; समञ्जस—हे समस्त अवसरों के स्रोत; त्वा—तुम से; विरहय्य—से पृथक् किया हुआ; काङ्क्षे—कामना करता हूँ।

हे समस्त सौभाग्य के स्रोत भगवान्! मुझे न तो ध्रुवलोक में, न स्वर्ग में अथवा ब्रह्मलोक में सुख भोगने की इच्छा है और न ही मैं समस्त भू-लोकों अथवा अधःलोकों का सर्वोच्च अधिपति बनना चाहता हूँ। मैं योग शक्तियों का स्वामी भी नहीं बनना चाहता, न ही आपके चरणकमलों को त्याग कर मोक्ष की कामना करता हूँ।

**तात्पर्य :** शुद्ध भक्त कभी-भी भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा करके भौतिक सौभाग्य की इच्छा नहीं करता। वह तो भगवान् तथा उनके पार्षदों की निरन्तर संगति में रह कर भगवान् की

प्रेममयी सेवा में लगा रहना चाहता है, जैसाकि पिछले श्लोक में वर्णन हुआ है ( दासानुदासो भवितास्मि) । इसकी पुष्टि नरोत्तमदास ठाकुर ने की है—

तांदेर चरण सेवि भक्तसने वास ।

जनमे जनमे हय, एइ अभिलाष ॥

शुद्ध भक्त की यही अभिलाषा रहती है कि वह भक्तों की संगति में रहकर भगवान् तथा उनके दासानुदासों की सेवा करता रहे ।

अजातपक्षा इव मातरं खगाः

स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।

प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा

मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ २६ ॥

#### शब्दार्थ

अजात-पक्षा:—जिनके अभी तक पंख नहीं उगे; इव—सदृश; मातरम्—माता; खगाः—छोटे पक्षी; स्तन्यम्—स्तन का दूध; यथा—जिस प्रकार; वत्सतराः—बछड़े; क्षुध्-आर्ताः—भूख से पीड़ित; प्रियम्—प्रिय या पति; प्रिया—पत्नी या प्रेमिका; इव—सदृश; व्युषितम्—प्रवासी, घर से दूर; विषण्णा—दुखी; मनः—मेरा मन; अरविन्द-अक्ष—हे कमल नेत्र वाले; दिदृक्षते—देखना चाहता है; त्वाम्—तुमको ।

हे कमलनयन भगवान्! जैसे पक्षियों के पंखविहीन बच्चे अपनी माँ के लौटने तथा खिलाये जाने की प्रतीक्षा करते रहते हैं, जैसे रस्सियों से बँधे छोटे-छोटे बछड़े गाय दुहे जाने की प्रतीक्षा करते रहते हैं जिससे उन्हें अपनी माताओं का दूध पीने को मिले या जैसे वियोगिनी पत्नी घर से दूर वसे अपने प्रवासी पति के लौटने तथा सभी प्रकार से तुष्ट किये जाने के लिए लालायित रहती है, उसी प्रकार मैं आपकी प्रत्यक्ष सेवा करने के अवसर पाने के लिए सदैव उत्कण्ठित रहता हूँ ।

तात्पर्य : शुद्ध भक्त की अभिलाषा रहती है कि वह स्वयं भगवान् के निकट पहुँचकर उनकी सेवा करे । यहाँ पर जो उदाहरण दिये गये हैं, वे सर्वथा उपयुक्त हैं । पक्षी के छोटे-छोटे बच्चे तब तक संतुष्ट नहीं होते जब तक उनकी माँ स्वयं आकर उन्हें दाना नहीं खिलाती, एक बछड़ा तब

तक प्रसन्न नहीं होता जब तक उसे अपनी माँ के थन का दूध पीने नहीं दिया जाता तथा पतिव्रता पत्नी, जिसका पति विदेश गया होता है, तब तक प्रसन्न नहीं होती जब तक अपने प्रिय पति से उसका मिलन नहीं हो जाता।

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं

संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।

त्वन्माययात्मात्मजदारगेहेष्व्

आसक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ २७ ॥

### शब्दार्थ

मम—मेरा; उत्तम-श्लोक-जनेषु—भक्तों में से, जो श्रीभगवान् के प्रति आसक्त हैं; सख्यम्—मित्रता; संसार-चक्रे—जन्म-मरण के चक्र में; भ्रमतः—घूमता हुआ; स्व-कर्मभिः—अपने ही कर्मों के फल से; त्वत्-मायया—आपकी माया से; आत्म—शरीर; आत्म-ज—सन्तान; दार—पत्नी; गेहेषु—तथा घर में; आसक्त—लিপ्त; चित्तस्य—जिसका मन; न—नहीं; नाथ—हे भगवान्; भूयात्—हो।

हे भगवान्, हे स्वामी! मैं अपने सकाम कर्मों के फलस्वरूप इस पूरे भौतिक जगत में घूम रहा हूँ और मैं आपके पवित्र तथा प्रबुद्ध भक्तों की संगति की ही खोज कर रहा हूँ। आपकी बहिरंगा शक्ति अर्थात् माया के प्रभाव से अपने शरीर, पत्नी, सन्तान तथा घर के प्रति मेरी आसक्ति बनी हुई है, किन्तु मैं अब और अधिक आसक्त नहीं बने रहना चाहता। मेरा मन, मेरी चेतना तथा मेरा सर्वस्व आपके ही प्रति आसक्त रहे।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध के अन्तर्गत “वृत्रासुर के दिव्य गुण” नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।